ग़ैर इस्लामी तवहहुमात व रस्मो रवाज में जकड़ा हुआ हमारा मुआशरा

मोहतरमा अन्दलीब ज़हरा कामुनपुरी साहेबा
अनुवादक : क़ायम महदी नक़वी तज़हीब नगरौरी

रसमो रवाज ने हमारी ज़िन्दगी को इस तरह जकड़ रखा है कि हम हलालो हराम, वाजिबात व मुहर्रमात की फ़िक्र से आज़ाद हो गये और बे मक़सद हत्ता कि बाज़ ग़ैर शरई रुसूम की अदायगी और तवहहुमात को वाजिबाते ज़िन्दगी समझ लिया है और ज़िन्दगी के अहम तरीन उमूरो फ़राएज़ से ग़ाफ़िल हो गये।

यूँ तो ज़िन्दगी के कई रंग हैं शादी ब्याह, मौत व ग़मी जिनमें अइज़्ज़ा व अहबाब जमा होते हैं मौक़े की नौईय्यत के एतबार से कुछ ख़ास उमूर अन्जाम दिये जाते हैं ख़ुशी की तक़रीबात में इज़हारे मसर्रत के लिए थोड़ी बहुत हलकी फुलकी बे ज़रर रुसूम अन्जाम दे लेना अलग बात है क्योंकि ज़िन्दगी ज़िन्दःदिली का नाम है लेकिन रस्मो रवाज पर इस क़दर सख़्ती से कारबंद रहना कि हरामो हलाल का ख़याल न रहे और किसी रसम में ज़रा सी कमी व बेशी हो जाने से दिल तरह–तरह के वसवसों से भर जाये ये चीज़ उम्मते मुस्लेमः के शायाने शान नहीं है ख़ुशी की महफिल हो या ग़मों की तक़रीब मियानारवी इख़्तियार करना इस्लाम की नज़र में सबसे पसन्दीदः अम्र है। और हालात का तक़ाज़ा भी यही है ज़िन्दगी को आसान बनाना दानिश्मन्दी है न कि रस्मो रवाज में उलझ कर ज़िन्दगी को मुश्किल बना लिया जाये। मुस्लिम मआशरे पर नज़र डालिये तरह–तरह के ख़ुराफ़ात को अस्ल मज़हब समझ लिया गया है क़दम–क़दम पर हमारे यहाँ यह नहीं होता वह नहीं होता के चक्कर ने इन्सानी फ़िक्र को इतनी मामूली–मामूली बातों में उलझा कर रख दिया है।जबकि ख़ुदावन्दे आलम ने इन्सान को अक़्लो फ़हम व इदराक अता कर के तमाम मख़लूक़ात में सबसे अफ़ज़ल व बरतर बनाया है। अल्लामा इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा है:

"तू शाहीं है परवाज़ है काम तेरा
तेरे सामने आसमाँ और भी हैं।"

लीजिए इज़दवाजी ज़िन्दगी की इब्तेदा हुई, ख़ुदावन्दे करीम ने औलाद की शक्ल में नेमत अता की। शुक्रे ख़ुदा के बजाए ग़ैर ज़रूरी रस्मों का सिलसिला शुरु हो गया। छटी, चिल्ला जैसी रस्मों को अन्जाम देना फ़र्ज़ समझ लिया गया और कहीं बेटी के यहाँ बच्चा पैदा हुआ तो उसके छटी चिल्ले की फ़िक्र ने रातों की नींद हराम कर दी क्योंकि समधियाने वालों पर रोब भी जमाना है और शानो शौकत का मुज़ाहरा भी करना है और अगर कहीं यह जज़्बा नहीं है तो ''इज़्ज़तो आबरू'' तो बचानी है। बच्चे के लिए कपड़ों खिलौनों और दीगर ज़रूरियात की लम्बी फ़ेहरिस्त तैयार है, दामाद बेटी के लिए ज़ेवर जोड़े भी ज़रूरी हैं, आप शर्मिन्दः परीशान कि

कहीं न कहीं से इन्तेज़ाम करना है ख़्वाह क़र्ज़ लेना पड़े या कोई सामान बेचना पड़े। लड़की अलग डरी सहमी, शर्मिन्दः–शर्मिन्दः सी ससुराल वालों के तानों के ख़ौफ़ से ज़र्द हुई जा रही है अभी बेचारी मौत व ज़ीस्त (ज़िन्दगी) की कशमकश से आज़ाद हुई है। कमज़ोर बीमार है ख़ौफ़ अलग खाये जा रहा है, माँ बाप न दे सके या कम क़ीमत सामान दिया तो सास नन्दों के अलावा हर आने जाने वालों की बातें अलग सुनना पड़ेंगी अगर ख़ुश क़िस्मती से लड़की से ससुराल वाले शरीफ़ और नेक हुए तो पड़ोसी मिलने जुलने वाले कुरेद–कुरेद कर पूछेंगे क्या–क्या सामान आया? फ़लाँ के मायके वाले बड़े दिलवाले हैं क्या शानदार छटी आयी थी लोग देखते रह गये अब झूट बोल–बोल कर उनका मुँह बन्द कीजिए। ऐसी ही बेजा रुसूम के सबब बेटी पैदा होती है तो लोगों के मुँह उतर जाते हैं हालाँकि हज़रत रसूले अकरम का इरशादे गेरामी है कि बेटी ''रहमत'' है।

किसी भी चीज़ को रस्म न बनाइये, जिससे आपको भी तकलीफ हो और दूसरों को भी।

ग़ालेबन सबसे ज़ियादा वक़्त और पैसे की बरबादी एक अहम शरई फ़रीज़ा ख़त्ने पर की जाती है धूम–धाम के चक्कर में बच्चा काफी बड़ा हो जाता है तब ख़त्ना कराया जाता है। हालाँकि तिब्बी नुक़्त–ए–नज़र से और तहज़ीब व शाइस्तगी का तक़ाज़ा भी यही है कि पैदाइश के बाद जितनी जल्दी हो सके इसे अन्जाम दिया जाए, बड़ा होने पर बच्चा शर्म महसूस करता है और तकलीफ़ भी ज़ियादा होती है। हफ़्ता दो हफ़्ता की उर्म में बच्चे की खाल नर्म होती है और जल्दी ठीक हो जाता है।

नौ साल की उम्र में लड़की पर नमाज़, रोज़ा वाजिब हो जाता है लेकिन यह वाजिब अम्र (काम) भी रस्मों की नज़्र हो जाता है जब तक धूमधाम से ''रोज़ा कुशाई'' करने का बन्दोबस्त न हो जाए, लड़की को रोज़ा नहीं रखवाया जाता और कई–कई साल इसी तरह टाल दिये जाते हैं। उमूमन लोगों ने यह समझ रखा है कि रोज़ा कुशाई के बग़ैर रोज़ा नहीं रखा जा सकता। दस, बारह, तेरह साल की लड़की से पूछिये बेटा रोज़ा रखती हो? जवाब देगी ''जी नहीं अभी रोज़ा कुशाई नहीं हुई है।''

अइज़्ज़ा व अहबाब को इज़्ज़तो एहतेराम से अपने घर मदऊ करना और रोज़ा इफ़्तार कराना मुस्तहब्बात में से है लेकिन एक फ़र्ज़ (वाजिब) पर मुस्तहब को तरजीह देना कहाँ की दानिशमन्दी है। धूम–धाम से रोज़ा कुशाई करने में दूसरों की नज़र में अपने वक़ार को बढ़ाना और शान दिखाना मक़सूद हो तो (और साथ में यह बात भी ज़हन में गोशे में महफ़ूज़ रहे कि नेयोते के नाम पर मेहमानों से इतना मिल जायेगा कि सारा ख़र्चा निकल आयेगा) उस सवाब को कम कर देता है जो हमें रोज़ादार मेहमानों को खिलाकर हासिल हो सकता था। बल्कि हम इस तरह दूसरों की हौसला शिकनी करने के जुर्म के भी मुरतकब होते हैं कम हैसियत वाले लोग बरसों इसी फ़िक्र में बच्ची रोज़ा नहीं रखवाते कि कुछ इंतेज़ाम हो जाये तो रोज़ा कुशाई कराएँ ताकि ख़ानदान और मोहल्ले वालों की नज़र में कंजूस और मक्खीचूस न समझे जाएँ। नज़र में रोज़े की अहम्मीयत इतनी नहीं है जितनी रोज़ा कुशाई की, ख़्वाह क़र्ज़ लेना पड़े या बच्चों की ताअलीम रुक जाये रोज़ा

कुशाई के बाद भी कितने बच्चे रोज़ा रखते हैं यह सवाल भी ग़ौर तलब है।

और अगर आक़ेबत संवारना है तो इस मुबारक मौक़े पर जब आपकी लाडली बेटी इस्लामी कलेण्डर के हिसाब से जिस महीने में भी नौ साल की हो जाए या रजब या शाबान के मुक़द्दस महीने में अपनी हैसियत के मुताबिक़ एक हलकी फुलकी तक़रीब कर दीजिए, शानो शौकत के मुज़ाहरे और दूसरों की वाह–वाह की फ़िक्र ज़हन के किसी गोशे में हरगिज़ न रहे सिर्फ ख़ुदावन्दे आलम की ख़ुशनूदी का ख़याल रहे। अपने अज़ीज़ व अक़ारिब और बच्ची की चन्द सहेलियों के अलावह अगर उस तक़रीबे सईद में अपने कुछ ग़रीब व मिस्कीन मुसलमान भाई बहनों को भी अपने साथ दस्तरख़्वान पर बिठा लें तो उस तक़रीब और आपके दस्तरख़्वान की शान ही कुछ और होगी यक़ीनन मलायका भी दुरूद भेजेंगे। मुमकिन हो तो इस मौक़े पर एक मुख़्तसर तक़रीर का एहतेमाम कीजिए और अवाम को नमाज़, रोज़े, हिजाब और दूसरे वाजिबात की तरफ़ मुतवज्जेह कीजिए और बताइये कि बच्ची जिस वक़्त नौ साल की हो जाये तो उस पर तमाम शरई ज़िम्मेदारियाँ आयद हो जाती हैं और पहली रमज़ानुल मुबारक से रोज़ा रखवाइये। यह नहीं कि आधा रमज़ान गुज़ार के रोज़ा कुशाई की और बिला वजह इतने वाजिब रोज़े क़ज़ा करवा दिये। इस तरह की तक़रीरें दूसरों की हौसला अफ़ज़ाई का बायस बनती हैं और आपको भी इसका सवाब मिलेगा।

ख़ुदा के फ़ज़्लो करम से बच्चे बड़े हुए इनकी शादी के मुक़द्दस फ़रीज़े से सुबुकदोश होने का मौक़ा आया शादी तै होते ही जैसे और वक़्त की बर्बादी का सिलसिला शुरु हो गया तारीख़ तै करने के लिए दोनो तरफ़ इन्तेज़ामात शुरु हो गये, पैसे की तंगी आड़े आ रही है लेकिन लड़की वालों की सुबकी न हो जाए या लड़के वालों की तरफ से कोई कमी न रह जाए कि इज़्ज़त को बट्टा लग जाए! ख़्वाह क़र्ज़ लेना पड़े लेकिन सब मरासिम अन्जाम देना ज़रूरी हैं। हालाँकि सादगी के साथ दोनों तरफ़ के चन्द बुज़ुर्ग बैठकर तारीख़ और दूसरे उमूर तै कर सकते हैं अगर अलग–अलग शहरों में हैं तो ख़ुतूत के ज़रिये सब बातें तै हो सकती हैं। शादी के हफ़्तों मे पहले मुख़्तलिफ़ मरासिम शुरु हो जाते हैं। और मेहमानों की आमद और ख़ातिर तवाज़ो में वक़्त और पैसा बर्बाद होता है। बारात चली तो काफ़ी हंगामा, बाज़ ख़ानदानों में बारात के साथ ढोल, ताशे, शहनाई ना हो तो गोया वह बारात ही नहीं। अपना रोब जमाने के लिए बरी ले जाना और दिखाना ज़रूरी है। पैसा नहीं तो क्या हुआ कुछ क़र्ज़ लेकर जोड़े बनाये, कुछ दूसरों के जोड़े माँग कर लगा दिये। बरी में शकर मेवे तो ख़ैर काम की चीज़ हैं मगर बरी का एक बहुत ही अहम जुज़ ''सुहाग पूड़ा'' का मसरफ़ आज तक समझ में न आया। न जाने इसमें क्या–क्या अला बला भरा होता है फिर मिट्टी की एक हंडिया में ज़रा सा दही और उसके मुँह पर मछलियाँ बाँधकर ले जाना, वाजिबात में शामिल है। क्या आपने ग़ौर किया है कि यह बेजान मछलियाँ भला हमारी क़िस्मत में क्या इन्केलाब ला सकती हैं।

धूम–धूम से बाराती दुलहन के घर पहुँचे वहाँ भी अजीबो ग़रीब मन्ज़र है। एक बड़े से

कमरे में नुमाइश लगी है, कुछ अलगनियाँ बंधी हैं जिन पर अलग–अलग जोड़े लटक रहे हैं। ग़रारे सूट, शलवार सूट, साडियाँ, शालें, चादरे, पलंगपोश, एक तरफ़ बरतनों की क़तार है। ग़रज़ कि एक माहिर दुकानदार की तरह जहेज़ की हर छोटी बड़ी चीज़ को निहायत नुमायाँ तरीक़े से रखा गया है। मेहमानों को निहायत फ़खर व शान के साथ एक–एक चीज़ दिखायी जाती है। बारात के आने के बाद दुल्हा वाले एक–एक चीज़ को ग़ौर से देखते और परखते हैं। और दी हुई लिस्ट से मिलाते हैं। और वापसी के वक़्त ऐसे सामान उठाते हैं जैसे लूट का माल ले जा रहे हों कई ऐसी ग़ैर ज़रूरी चीज़ें जिनका आज कल की ज़िन्दगी में कोई इस्तेमाल नहीं, जहेज़ का लाज़मा क़रार दी जाती हैं जो सरासर इसराफ़ है बरी और जहेज़ की नुमाइश एक निहायत ना पसन्दीदा फ़ेल है। जो नहीं दे सकते उनकी दिल आज़ारी होती है। जहेज़ की लालच के सबब कितनी हुनरमन्द और तअलीम याफ़्ता लड़कियाँ कुँवारी रह जाती हैं या उनके हस्बे हैसियत लड़के नहीं मिलते।

बाज़ मक़ामात पर एक अजीब सी रस्म है कि बारात के आते ही निकाह से पहले ही दूल्हा को मकान के दरवाज़े पर या अन्दर बुलाया जाता है। और दुल्हन की बहनें, सहेलियाँ और दूसरी रिश्तेदार ख़वातीन फूलों की छड़ियों से उसकी तवाज़ो और हंसी मज़ाक़ करती हैं। ज़रा ग़ौर कीजिए दूसरी ख़वातीन तो हमेशा ही ना महरम रहेंगी लेकिन अभी तो दुल्हन की माँ तक जो निकाह के बाद दुल्हा की हक़ीक़ी माँ जैसा मरतबा पायेंगी, नामहरम हैं। यह ग़ैर शरई रस्म कैसे शुरु हुई और क्या इसको ख़त्म करना ज़रूरी नहीं है??? निकाह के बाद दूल्हा सलाम कराई के लिए अन्दर आता है उस वक़्त बेज़रर हलकी फुल्की रस्में अन्जाम दे लें तो कोई क़बाहत नहीं मसलन आरसी मुसहफ़ जिसमें दूल्हा दुल्हन सूर–ए–एख़लास की तिलावत के बाद आईने में एक दूसरे का चेहरा देखते हैं, बाज़ ख़ानदानों में इस मौक़े पर तरह–तरह की बेहूदा रस्में शुरु हो जाती हैं। दूल्हा के साथ–साथ उसके दोस्तों और रिश्तेदारों की जवान टोलियाँ भी अन्दर आ जाती हैं। यही मौक़ा होता है..... .... उधर लड़कियाँ भी ज़र्क़–बर्क़ कील काँटे से लैस...................तीर चलाने को बिलकुल तैयार बैठी हैं। नज़र के साथ–साथ ज़बान के वार भी जारी हैं। रस्में शुरु होती हैं जिनका अक्सर तूफ़ानी सिलसिला चलता है। शोर बुलन्द हुआ .... संदल कहाँ है? अगर बरी के साथ संदल नहीं आया तो बदशुगूनी शुरु होगी, दिल लरज़ने लगा .... संदल मिल गया तो दुल्हन की माँग भरने के लिए दूल्हा के बड़े भाई को बुलाया जा रहा है। लीजिये दुल्हन का दीदार सबसे पहले जेठ साहब करेंगे। जो हमेशा ही ना महरम रहेंगे। माँग भरने या ना भरने से सुहाग क़ायम रहने की गारंटी नहीं हो जाती बहर हाल माहोल में ख़ुशी व मसर्ररत का रंग बिखेरने के लिए यह रस्म ज़रूर कीजिए मगर यह रस्म शौहर के हाथों अन्जाम पाये ना महरम के हाथों नहीं।

ख़ुदा–ख़ुदा करके दुल्हन रुख़सत हुई तो चौथी चाले शुरु हो गये। चौथी में वह तूफ़ान बदतमीज़ी कि अलअमान। दोनों तरफ़ के लड़के लड़कियो के हंसी मज़ाक़ करने का मौक़ा बुज़ुर्गों

ने फ़राहम कर दिया, सब्ज़ियों, फ़लों और अण्डों की बर्बादी न पूछिये। क़ौम के कितने अफ़राद दाने–दाने को तरस रहे हैं और शादी ख़ाना आबादी जैसे मुबारक मौक़े पर ख़ुदा की अता की हुई नेमतों और गिज़ाओं को हम इस तरह तबाह करने पर तुले हुए हैं।

एक रस्म जो बहुत आम है वह दुल्हन की गोद भरने की है, रुख़सती के वक़्त दुल्हन के दुपट्टे के चारों कोनों में शुगून के लिए कुछ चीज़ें बाँध दी जाती हैं। शादी के बाद लड़की, मैके या ससुराल के किसी अज़ीज़ या जानने वाले के घर जाती है तो उसकी गोद भरना ज़रूरी होता है। आँचल में चावल, माश, शकर, पान का पत्ता और रुपये डाले जाते हैं। अगर कहीं भूल चूक हो गयी तो दिल अन्देशों से भरा जाता है कि कहीं दुल्हन बे औलाद न रह जाये, ज़रा इस रस्म पर भी ग़ौर कीजिए क्या वह सब दुल्हनें जिनकी गोद भरी जाती है रही है उनमें कोई ऐसी नहीं जो औलाद से महरूम रह गयी हो और क्या जिनके यहाँ यह रस्म नहीं मानी जाती, ख़ुदावन्दे आलम ने उनको औलाद की नेमत से मालामाल नहीं किया है?

रस्में हमारी ज़िन्दगी में परेशानियाँ पैदा कर देती हैं, हमारे दुखों और महरूमियों का इलाज नहीं कर सकती। नेमतें अता करने वाला ख़ुदावन्दे रहीमो करीम है। क़ुर्आने करीम में सूर–ए–शोअरा (42) की आयत 59–60 पर नज़र डालिये, परवरदिगार क्या फरमाता है। .... ''अल्लाह जो चाहता है पैदा करता है और जिसे चाहता है फ़क़त बेटियाँ देता है और जिसे चाहता है सिर्फ बेटे अता करता है या उनको बेटे बेटियाँ दोनों इनायत करता है और जिसको चाहता है बाँझ बना देता है।''

ज़रा ग़ौर कीजिये हम उस नबी–ए–आख़ेरुज़्ज़माँ (आख़री नबी) के मानने वाले हैं जिसको ख़ुदा ने रहमतुल लिलआलमीन बनाकर हमारी हिदायत व रहनुमाई के लिए भेजा, जिसने दुनिया को जिहालत व तारीकी से निकालकर इल्मो अमल की रौशनी अता की और हम फ़ुज़ूल रुसूम और बेजा तवह्हुमात का इस तरह शिकार हैं कि मामूली–मामूली बातों में कमी व बेशी पर बदशुगूनी का ख़ौफ़ सताने लगता है। शादी के बाद एक साल के अन्दर ख़ानदान में कोई हादसा या मौत या नुक़सान हो गया तो दुल्हन को मन्हूस या सब्ज़क़दम कहकर उसकी ज़िन्दगी अजीरन कर दी जाती है। बल्कि बाज़ औक़ात तो दुल्हन को हमेशा के लिए मायके भेज दिया जाता है या तलाक़ दे दी जाती है।

शादी ख़ाना आबादी जैसे मुबारक मौक़े पर जब दो अजनबी ज़िन्दगी भर के लिए रिश्त–ए–इज़देवाज में मुनसलिक हो रहे हों हमें यह फ़िक्र नहीं रहती कि कहीं ऐसा कोई अमल सरज़द न हो जाए जो ख़ुदा और रसूल की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो और उसका एताब नाज़िल हो जाए, हाँ डर लगता है तो इससे कि फ़लाँ की शादी में यह रस्म हुई थी या यह रस्म रह गयी थी तो यह शादी कामयाब नहीं हुई या ख़ानदान में कोई ग़मी हो गयी, निकाह के वक़्त दुल्हन की नाक में नथ पड़ना ज़रूरी है वरना बदशुगूनी हो जायेगी बल्कि बाज़ ख़ानदानों में तो नाक में नथ नहीं पड़ी तो निकाह ही जाएज़ नहीं हुआ क्या यह सब सही है?

आपने निकाह का नथ से किस तरह तअल्लुक़ जोड़ लिया, मज़हब की अस्ल रूह को

पहचानिये मफ़रूज़ा तवह्हुमात और मुरव्वजा ग़लत रुसूम से इजतेनाब कीजिये। बाज़ ख़ानदानों में साल के कुछ महीनों को ही मनहूस क़रार दे दिया जाता है। फ़लाँ महीने में शादी हुई थे तो ख़ानदान में मौत हो गयी लेहाज़ा इस महीने में तो हमारे ख़ानदान में शादी नहीं की जाती, दूल्हा मुल्क के बाहर सरविस करता हो उसे जल्दी वापस जाना हो ख़्वाह शादी ही रुक जाए मगर इस महीने में शादी नहीं हो सकती, कमाले तअज्जुब तो यह है कि बाज़ ख़ानदानों में रजब और शअबान जैसे मुक़द्दस व मोहतरम महीनों में शादी से गुरेज़ किया जाता है। और इसी तरह का वहम किया जाता है, हालाँकि इन दोनों महीनों की फ़ज़ीलत के लिए बहुत सी रिवायतें मिलती हैं।

हज़रत रसूल अकरम (स0) का इरशाद है कि माहे रजब ख़ुदा का महीना है और इसकी हुरमत व फ़ज़ीलत तमाम दूसरे महीनों से बेहतर है और शअबान मेरा महीना है लेहाज़ा जिन महीनों को ख़ुदा ने अपने और अपने हबीब से ख़ास तौर पर मन्सूब किया हो उसकी बरकत व फ़ज़ीलत का क्या कहना इसी तरह हफ़्ते के कुछ दिन मुअय्यन कर लिए गये हैं जिनमें किसी के घर ताज़ियत अदा करने नहीं जा सकते।

शादी, ख़त्ना, अक़ीक़ा और सालगिरह वगैरा पर बहुत धूम–धाम करके ख़ुश होना कि दूसरे लोग तारीफ़ करेंगे और बरसों याद रखेंगे या इस पर फख़्र करना कि जैसा शानदार इन्तेज़ाम और एहतेमाम हमने किया था हमारे यहाँ कोई दूसरा नहीं कर सकता, यह सब फ़ख़्र व मुबाहात क्या सरकारे दो आलम की उम्मत को ज़ेब देते हैं। जिसने अपनी चहीती बेटी की शादी किस सादगी से की थी ताकि हमारे लिए नमून–ए–अमल क़ायम हो इन तक़रीबात पर रुपये पैसे और वक़्त की बर्बादी करके हम अपने मआशरे को किस सिम्त लिए जा रहे हैं।

हमें ख़ुदा व रसूल की ख़ुशी मद्देनज़र रखनी चाहिए या अइज़्ज़ा व अहबाब की?

बेजा शानो शौकत के मुज़ाहरे और फ़ुज़ूल रुसूम की अदायगी के बजाय अगर हम अपने बच्चों की तालीम व तरबियत पर तवज्जो दें तो एक सेहतमन्द इस्लामी मआशरे की तश्कील हो सकती है जहाँ एक–एक तक़रीब पर बहुत ज़ियादा वक़्त और पैसा सर्फ़ किया जाता है वहाँ वालदैन बच्चों की सही तालीम व तरबियत कर ही नहीं सकते।

तवह्हुमात को दिल में जगह न दीजिए, रुसूम के गुलाम न बनिये। शादी ब्याह को आसान बनाइये, छोटी–मोटी तक़रीब ज़रूर कीजिए मगर इसमें भी तअमीरी और इस्लाही पहलू नुमायाँ रहे। शरई अहकाम और सादगी को पेशे नज़र रखिये और ऐसे मौक़ों पर अपने मुस्तहेक़ भाई–बहनों को ज़रूर याद रखिये।

शादी, अक़ीक़ा और रोज़ा कुशाई वग़ैरा की तक़ारीब में मुख़्तसर तक़रीर का एहतेमाम ज़रूर कीजिये जिसमें सेहतमन्द मआशरे की तश्कील, मुरव्वजा (राएज) ग़लत रुसूम की मज़म्मत और उसके ग़लत नताएज और शरई एतबार से उसकी अहम्मियत पर ज़ोर दिया जाए, फ़राएज़ की अदायगी और वाजिबात व मुस्तहेब्बात पर अमल करने नीज़ मुहर्रमात व मकरूहात से इजतेनाब करने, नेकी इख़्तियार करने और बुराइयों से बचने पर मुतवज्जेह किया जाता रहे। □□□